ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों के सामने चुनौतियां

सहकारी आंदोलन आज के युग में साधारण व्यक्ति के हर पहलू कृषि, खाद, दुग्ध उत्पादन, गृह निर्माण आदि से जुड़ गया है। यह लोगों का अपना आंदोलन है जो प्रजातांत्रिक ढंग से नियंत्रित होता है। सहकारी समितियां निश्चित रूप से प्रजातांत्रिक संस्थाएं होती हैं जिनका गठन सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से किया जाता है। सहकारी समिति का अर्थ है व्यक्तियों का समूह जिनका गठन सहकारी सिद्धांतों के अनुरूप किया गया हो। कानूनी रूप से सहकारी सोसायटी अधिनियम के अंतर्गत सोसायटी को सहकारी समिति कहा जाता है।

आवास की समस्या बड़ी गंभीर है। आम लोगों को रहने के लिए वांछित गृह निर्माण की आवश्यकता बनी रहती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जरूरतमंद लोगों द्वारा ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों का गठन किया जाता है। इन समितियों की विशेषता यह है कि इन समितियों के सदस्य सामान्यतया समान विधारधारा के होते हैं जिससे आपस में मिलकर रहना अधिक सहज, शांतिप्रिय व सौहार्दपूर्ण होता है। जब हरियाणा नगर विकास प्राधिकरण (हूडा) द्वारा ग्रुप हाउसिंग योजना की अधिसूचना जारी की जाती है तब इन ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समतियों के गठन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इसके लिए सदस्यों की न्यूनतम सदस्य संख्या 10 या इससे अधिक होती है। सोसायटी के गठन के लिए, सहायक रजिस्ट्रार, सहकारी समितियों को प्रार्थना पत्र दिया जाता है। सोसायटी के पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) के पश्चात् हूडा को भूमि आवंटन के लिए आवेदन किया जाता है जहां से भवन निर्माण के लिए सिर्फ भूमि आवंटित होती है। 1990 ई. से पूर्व सोसायटी का रजिस्ट्रेशन कराने में कोई विशेष कठिनाई नहीं आती थी क्योंकि तब लोगों का फ्लैट के प्रति रुझान कम था बैंक से आवासीय ऋण लेना भी आसान नहीं था जिनकी आर्थिक क्षमता हूडा के सेक्टर में प्लॉट खरीदने व गृह निर्माण करने की नहीं होती थी वे ही जरूरतमंद लोग ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों के सदस्य बनते थे, परंतु 1990 के बाद इस स्थिति में भारी परिवर्तन आ गया। प्रॉपर्टी डीलर, बिल्डर आदि मुनाफे के मद्देनज़र इन समितियों के गठन में सबसे आगे आ गए। इनके लिए समितियों का रजिस्ट्रेशन कराना अपने प्रभाव के कारण कोई मुश्किल कार्य नहीं है जबकि वे जरूरतमंद लोग जिन्हें वास्तव में रहने के लिए मकान चाहिए उनको अपनी समितियों को रजिस्टर कराने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों द्वारा अपने भवन बनवाने के बाद हरियाणा सरकार के विभिन्न विभागों से अनापत्ति प्रमाण (एनओसी) व अन्य सुविधाएं लेने के लिए पापड़ बेलने पड़ते हैं। अग्निशमन विभाग, हूडा, बिजली विभाग आदि से प्रमाण पत्र लेना बड़ी टेढ़ी खीर है, जूते घिस जाते हैं, समय भी बहुत लगता है। इन विभागों से काम कराने के लिए इनके एजेंट अथवा अधिकृत व्यक्ति के पास जाना पड़ता है जो अपना पूरा मकड़जाल फैलाए बैठे हैं, जहां भारी मात्रा में सुविधा शुल्क दिए बिना काम कराना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होता है।

वर्तमान में लागू सहकारी नियम सहकारी समितियों को कार्य करने की पूर्ण स्वायत्तता प्रदान नहीं करते। रोजाना के कार्यों का नियंत्रण भी सरकारी तंत्र द्वारा होता है। कुछ महत्वपूर्ण बिंदु निम्न हैं :-

> "ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियां हरियाणा सहकारी समितियां अधिनियम (1984) के अंतर्गत रजिस्टर्ड है तथा इसी के अंतर्गत रजिस्ट्रार, सहकारी समितियों के आधीन इनका संचालन होता है। इन समितियों का सदस्य समिति का शेयर सेल्डर है जिसका समिति की पूरी सम्पत्ति में हिस्सा है, जिसके लिए उसे समिति द्वारा शेयर सर्टिफिकेट दिया जाता है। यदि कोई सदस्य अपनी सदस्यता छोड़ता है तो उसके स्थान पर आने वाले सदस्य को सभी अधिकार व सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त हो जाता है।"

ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों को जो बिजली का कनेक्शन दिया जाता है उस पर बिजली विभाग द्वारा कमर्शियल रेट पर बिल चार्ज किया जाता है जबकि वहां कोई व्यवसायिक गतिविधि नहीं चलती तथा न ही चल सकती है। ये समितियां केवल आवासीय समितियां हैं।

हूडा द्वारा इन ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों को पानी का कनेक्शन दिया जाता है जबकि सिक्योरिटी इनसे फ्लैट की कुल संख्या के आधार पर जमा करवाई जाती है। इसका परिणाम होता है कि इन्हें पीने का पानी नियमानुसार आवश्यक मात्रा में भी नहीं मिलता है और पीने के पानी का संकट खड़ा रहता है। ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों द्वारा भवन निर्माण के आवश्यक अनापत्ति प्रमाण पत्र (एनओसी) लेने के बाद भवन की भूमि के मूल्य के आधार पर स्टॉम्प पेपर के माध्यम से शुल्क अदा करने व कन्वेंस डीड कराने के बाद आवास के सिर्फ हूडा द्वारा कम्पलीशन सर्टीफिकेट दिया जाता है। परंतु मुख्य प्रशासक, हूडा ने अब यह आवश्यक कर दिया है कि समिति के सदस्यों जिन्हें अपनी सदस्यता व शेयर के कारण फ्लैट मिला है, को अपने-अपने फ्लैट की रजिस्ट्री करवानी होगी। यह हर सदस्य पर दोहरी मार है। पहले तो उस सदस्य ने कन्वेंस डीड के लिए रुपए दिए, अब फ्लैट की रजिस्ट्री के लिए भी राशि का भुगतान करे। गौरतलब है कि यह प्रावधान सहकारिता के सिद्धांत के बिल्कुल उलट है।

ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियां हरियाणा सहकारी समितियां अधिनियम (1984) के अंतर्गत रजिस्टर्ड है तथा इसी के अंतर्गत रजिस्ट्रार, सहकारी समितियों के आधीन इनका संचालन होता है। इन समितियों का सदस्य समिति का शेयर सेल्डर है जिसका समिति की पूरी सम्पत्ति में हिस्सा है, जिसके लिए उसे समिति द्वारा शेयर सर्टिफिकेट दिया जाता है। यदि कोई सदस्य अपनी सदस्यता छोड़ता है तो उसके स्थान पर आने वाले सदस्य को सभी अधिकार व सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त हो जाता है तथा शेयर सर्टिफिकेट के पीछे उसकी सदस्यता के हस्तांतरण का इंडार्समेंट हो जाता है। इस प्रकार फ्लैट की रजिस्ट्री सहकारिता के आंदोलन को कुचलने का प्रयास है।

इसके अतिरिक्त हूडा द्वारा हरियाणा अपार्टमेंट अधिनियम (1984) ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियों पर थोपा जाता है जबकि यह अधिनियम ग्रुप हाऊसिंग समितियों (जिनका पंजीकरण इंडियन सोसायटी एक्ट के अंतर्गत होता है) के लिए है। इस प्रकार ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियां दो अधिनियम के अंतर्गत दो विभागों की शिकार बन जाती है।

रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां द्वारा आदेश जारी किया जाता है कि सभी ग्रुप हाऊसिंग सहकारी समितियां अपनी-अपनी वेबसाइट बनवाएं। सहकारी समितियों का रिकॉर्ड अपनी समिति के सदस्यों के लिए होता है, न कि सारी जनता के लिए। इन समितियों को सरकार व किसी सरकारी संस्था द्वारा कोई आर्थिक अनुदान नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त हर समिति पर बिना किसी बात के प्रतिवर्ष आर्थिक बोझ भी लाद दिया गया। एक वेबसाइट बनवाने पर लगभग 8-10 हजार खर्च आता है तथा उसको अपडेट कराने के लिए भी प्रतिवर्ष लगभग 3 से 5 हजार रुपया खर्च करना होगा।

मुख्य प्रशासक हूडा द्वारा एक आदेश जारी किया गया कि किसी भी समिति के सदस्यों का हस्तान्तरण एक निश्चित संख्या तक ही होगा। अब मुद्दा यह है कि यदि उस निश्चित संख्या के बाद यदि कोई सदस्य अपनी सदस्यता छोड़ता है तो उसे कौन रोक लेगा तथा उसके स्थान पर यदि कोई नया सदस्य नहीं लिया जाता है तो क्या समिति का कार्य ठप्प नहीं हो जाएगा तथा क्या समिति भंग होने के कगार पर नहीं आ जाएगी।

इनके अतिरिक्त अन्य और भी कई प्रावधान हैं जिनसे इन समितियों का संचालन सुचारू रूप से नहीं हो पाता। जब तक ऐसे नियमों व प्रावधानों को हटाया नहीं जाएगा तब तक सहकारी संस्थाएं विकसित नहीं होंगी।

▯ **प्रो. जे.के. गुप्ता**

मनुष्य महाविनाश से कैसे बच सकता है?

धरती को महाविनाश से बचाने के लिए कोपनहेगन में जो सम्मेलन आयोजित किया गया, वह एक तरह से निरर्थक ही साबित हुआ। यह होना ही था। ऐसा इसलिए कि वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था का आधार ही प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन है। प्रकृति पर 'विजय' को ही 'विकास' का पर्याय मान लिया गया है। प्रकृति पर विजय के मद में चूर, औद्योगिक उत्पादन को अधिक से अधिक बढ़ावा देने वाली ताकतों ने, जिनका एकमात्र उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाना है, अब जाकर यह समझने का ढोंग किया है कि पर्यावरण खतरे में है और विकास का औद्योगिक मार्ग मानव के अस्तित्व के लिए ही खतरनाक है।

लेकिन सवाल यह है कि मानव सभ्यता जो विकास के औद्योगिक मार्ग पर चलने की अभ्यस्त हो चुकी है, उसे वर्तमान स्थितियों में बदला जा सकता है?

आज वे देश अपने आपको विकसित मान रहे हैं जिनका पूर्ण औद्योगिकीकरण हो चुका है और अल्प विकसित देशों को अपना माल बेच-बेच कर या वहां पूंजीनिवेश कर औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के नाम पर वहां की पूंजी का प्रवाह अपनी ओर कर रहे हैं। दूसरी तरफ यह धारणा विकसित की गई है कि जो देश औद्योगिकीकरण के मामले में पिछड़े हुए हैं, उनका विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक वे पूर्ण औद्योगिकीकरण के लक्ष्य को पूरा न कर पाएं। इसके लिए तथाकथित विकसित देश पिछड़े देशों की मदद के नाम पर उन्हें कर्ज़ के मकड़जाल में फंसाते हैं और फ़िर वहां के प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करने लग जाते हैं। पैसे का लालच में वे पेड़-पौधों, जंगलों, नदियों और जीव-जंतुओं का विनाश करने लगते हैं।

इस पर बड़े वैज्ञानिक एवं चिंतक-विचारक यह कहते हैं कि विकास के जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, अगर इसी कदर चलते रहे तो पृथ्वी जीने लायक नहीं रहेगी। वायुमंडल का तापमान बढ़ता जाएगा और महासागरों का जलस्तर इतना ज़्यादा बढ़ेगा कि दुनिया के बड़े-बड़े सागर तटवर्ती नगर जलमग्न हो जाएंगे। दूसरी तरफ़ बढ़ती गर्मी से पहाड़ों की बर्फ पिघलने लगेगी और जीवनदायी नदियों का अस्तित्व मिट जाएगा।

वैज्ञानिकों और विचारकों का यह कहना है कि ऐसा इसलिए हो रहा है कि विकास के लिए जिन उद्योगों को खड़ा किया जा रहा है, जीवन को सुविधामय बनाने के लिए जिन तकनीकों का विकास किया एवं अपनाया जा रहा है, उससे पर्यावरण को पूरी तरह प्रदूषित करने वाले ग्रीन हाऊस गैसों-कार्बन डाइ आक्साइड और कार्बन मोनो आक्साइड आदि का उत्सर्जन बड़े पैमाने पर हो रहा है। उद्योगों पर आधारित संस्कृति में इससे बच पाना भी संभव नहीं है। इससे तभी बचा जा सकता है जब यह व्यवस्था की जाए कि बड़े उद्योग भी चलते रहें, वर्तमान परिवहन व्यवस्था भी कायम रहे और ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन भी न हो। सवाल उठता है, क्या यह संभव है? गुड़ खाकर गुलगुलों से परहेज आखिर कैसे किया जा सकता है?

> "आज पिछड़े और विकासशील देशों के मुकाबले औद्योगिक रूप से विकसित राष्ट्र ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन के लिए कहीं ज्यादा ज़िम्मेदार हैं। लेकिन वे इसे स्वीकार नहीं करना चाहते। स्पष्ट है कि प्राकृतिक असंतुलन से महाविनाश का खतरा उत्पन्न हो जाने को लेकर वे बेपरवाह हैं। ऐसा इसलिए कि वे पूर्णतः भोगवाद की संस्कृति में डूबे हुए हैं और इससे निकलना भी नहीं चाहते।"

आदमी ने लालच में आकर जब जंगलों का सफ़ाया करना शुरू कर दिया, पर्यावरण को ध्वस्त करते हुए भारी-भरकम भीड़ वाले महानगरों को बसाया और परिवहन व्यवस्था को चलाने के लिए भारी मात्रा में ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन करने वाले पेट्रोल व डीज़ल चालित वाहनों का बड़ी संख्या में जमावड़ा किया, कल-कारखानों का ज़हरीला कचरा नदियों में बहाया, और लगातार ऐसा करता चला जा रहा है तो प्रकृति के महाविनाश से आखिर वह कैसे बच सकता है?

ऐसा कोई मार्ग नहीं कि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन भी न हो और औद्योगिक व्यवस्था फलती-फूलती भी रहे। हां, यह संभव है कि तकनीकी सुविधाओं का कम से कम इस्तेमाल करके, परिवहन व्यवस्था को सुव्यवस्थित करके एक हद तक प्राकृतिक संतुलन और औद्योगिक व्यवस्था में तालमेल बिठाया जाए। जहां तक पूरी तरह ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन पर काबू पाने की बात है, औद्योगिक व्यवस्था जिस हद तक अपनी जड़ें जमा चुकी है, उसमें यह संभव नहीं प्रतीत होता है। मनुष्य तथाकथित विकास के मार्ग पर जहां तक पहुंच गया है, वहां से पीछे की तरफ़ लौट पाना उसके लिए संभव नहीं है।

फिर क्या महाविनाश से बचा जा सकता है? औद्योगिक विकास ने सभ्यता के विनाश की जो उलटी गिनती शुरू की है, उसे रोका जा सकता है? नहीं, हर्गिज़ नहीं। हां, उस पर विशेष उपाय कर लगाम लगाई जा सकती है। लेकिन लालच में अंधे हो चुके औद्योगिक सभ्यता के प्रतिनिधि ऐसा भी करने के लिए तैयार नहीं हैं। कोपनहेगन सम्मेलन से यह स्पष्ट हुआ है कि विकसित राष्ट्र ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को रोकने की या उसे कम करने की जिम्मेवारी नहीं लेना चाहते। वे यह जिम्मेदारी पिछड़े और विकासशील देशों के मत्थे पढ़ना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि औद्योगिक विकास की जिस ऊंचाई पर वे पहुंच गए हैं, वहां से वापिस क्या, थोड़ा नियंत्रण भी न करें। दूसरी तरफ़ वे पिछड़े और विकासशील देशों को ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन नहीं करने को कहते हैं यानी औद्योगिक विकास से उसे रोकना चाहते हैं। इसमें उनका फायदा ही फायदा है। जब पिछड़े और विकासशील देश औद्योगिक रूप से विकसित नहीं होंगे तो वे बहुत सारी चीजों के लिए चंद विकसित राष्ट्रों पर निर्भर रहेंगे और उनके लिए मुनाफ़ा देने वाले बाज़ार बने रहेंगे।

आज पिछड़े और विकासशील देशों के मुकाबले औद्योगिक रूप से विकसित राष्ट्र ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन के लिए कहीं ज्यादा ज़िम्मेदार हैं। लेकिन वे इसे स्वीकार नहीं करना चाहते। स्पष्ट है कि प्राकृतिक असंतुलन से महाविनाश का खतरा उत्पन्न हो जाने को लेकर वे बेपरवाह हैं। ऐसा इसलिए, कि वे पूर्णतः भोगवाद की संस्कृति में डूबे हुए हैं और इससे निकलना भी नहीं चाहते। वे इस तथ्य को समझना नहीं चाहते कि मनुष्य प्रकृति का ही एक अंग है। प्रकृति से संघर्ष का मतलब यह नहीं कि वह उसके उपादानों का विनाश करने लगे। अगर वह प्रकृति के उपादानों का विनाश करेगा तो स्वयं भी नष्ट हो जाएगा। उसे प्रकृति के साथ सामंजस्य और तादातम्य बिठाना होगा, तभी वह अपने अस्तित्व को बचाए रख सकता है।

▯ **मनोज कुमार झा**